IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

संस्कृति का स्वरूप

डॉ सीमा रानी

सहायक प्रोफेसर

हिंदी विभाग

राजकीय महाविद्यालय , दुजाना

जिला- झज्जर

हरियाणा

मानव जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का संचालन इतिहास, परम्परा और संस्कृति के द्वारा होता है। घटनाओं का तिथिवार एवं स्थान सम्पृक्त वर्णन इतिहास है। उन घटनाओं से मानवता को उत्कर्ष देने वाले जो मानवीय अनुभव फूटते हैं, ये मानवता के अन्तर्गत आते हैं और इन्हीं घटनाओं से फूटते हुए मानवीय अनुभवों का सारभूत रूप परम्परा का सार संस्कृति कहलाता है। इसके अतिरिक्त जिससे व्यक्ति सच्चे अर्थो ने मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है इसे संस्कृति की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह मानव-जीवन की विशिष्ट पद्धति तथा विकास की दिशा में सतत गतिशील किन्तु तटस्थ जीवन-व्यवस्था है। अतएव यह एक प्रकार से सामाजिक भाव है। इस अति प्रचलित शब्द के लिए इतनी अधिक संख्या में परिभाषाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं- किन्तु अभी तक कोई सर्वमान्य नहीं है।

(क) 'संस्कृति' शब्द का निर्वचन

संस्कृति शब्द संस्कृत के 'सम' उपसर्ग के साथ 'कृ' धातु में 'सुट्' आगम पूर्वक 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। इसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। इसमें संस्कार करने अथवा किसी वस्तु को संस्कृत रूप देने की क्रिया या भाव निहित है। 'सम्' उपसर्ग तथा 'कृ' धातु के योग से निष्पन्न 'सरिक्रया' 'संस्कार' तथा 'संस्कृत' शब्द भी उपलब्ध होते हैं 'सरिक्रया' से तात्पर्य शुद्धि अथवा परिष्कार की क्रिया है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति तथा सरिक्रया में कारण एवं कार्य का सम्बन्ध है कोई आधारभूत अन्तर नहीं है। 'संस्कार' का अर्थ है मन, रुचि, आचार-विचार आदि को परिष्कृत तथा उन्नत करने का कार्य। इन्ही सरकारों की क्रिया द्वारा उत्तम या परिष्कृत की हुई कृति या रचना 'संस्कृत' शब्द से अभिहित की जाती है। सम्पूर्ण मानव जीवन की सम्यक् व्यवस्था के लिए भारतीय मनीषियों ने सोलह

संस्कारों की योजना की है। इनका लक्ष्य 'व्यक्तित्व' के विकास द्वारा मनुष्य का कल्याण और समाज तथा विश्व से उसका सामजस्य स्थापित करना था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यावहारिक दृष्टि से 'सरिक्रया', 'संस्कार' तथा 'संस्कृत' शब्दों का 'संस्कृति' पूर्ण अर्थ साम्य है। इन सभी में शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि तथा परिष्कार की भावना निहित है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा **चुका** है 'संस्कृति' का भी मूल अर्थ यही है।

कुछ विद्वान 'सम' उपसर्गपूर्वक 'कृति' शब्द से 'संस्कृति' शब्द की निष्पति मानकर इसका अर्थ भृष्णभृत सम्यक कृति (चेष्टा) स्वीकार करते हैं।वस्तुतः यह मत भी उपर्युक्त अर्थ की ही पुष्टि करता है, क्योंकि मनुष्य भौतिक एवं मानसिक दोनों ही रूपों में सतत क्रियाशील रहता है। इस अर्थ में कह सकते हैं कि 'आचार एवं विचार' ही संस्कृति है।

संस्कृति के व्यावहारिक अर्थ को समझने के लिए इसके इतिहास पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। संस्कृति शब्द को प्रथम प्रयोग यजु : संहिता में उपलब्ध होता है। वहाँ यह शब्द देवताओं को सोम प्रदान करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वेद में सोम मनस्तत्व का प्रतीक है। इसके संयोग में प्राण और भूत में गीत की जो दशा निर्धारित होती है, उससे विश्व का स्वरूप बनता और निखरता है। यही मनोयोग का भाव सोम के सेवन पान और प्रदान में निहित है। यही किया 'संस्कृति' नाम से अभिहित की गयी है। शतपथ ब्राह्मण में 'संस्कृति' शब्द एक विशिष्ट आचार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसका अभिप्राय अग्नि अथवा प्राणशक्ति की क्षमता को बढ़ाना है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग यद्यपि देवी क्रिया-कलापों के अर्थ में हुआ है तथापि इसका भावार्थ आत्मा एवं प्राणों की शक्ति का संवर्धन एवं उन्नयन है।

अंगरेजी में संस्कृत के समानार्थक रूप में कल्चर शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'कल्चर' शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा की धातु 'कुल्तुस' से हुई है। इसका मूल अर्थ 'कृषि करने की क्रिया है'। पाश्चात्य साहित्य में दीर्घकाल तक इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग होता रहा, किन्तु शनैः शनैः इसमें अन्य अर्थ भी समाहित हो गए और जिस अर्थ में यह शब्द ग्रहण किया जाता है।उससे तात्पर्य है- विचार, रुचि एवं आचार का परिष्करण एवं प्रशिक्षण इस प्रकार से परिष्कृत एवं प्रशिक्षित होने की स्थिति तथा सभ्यता का बौद्धिक पक्ष। इसके साथ ही इसे नैतिक एवं बौद्धिक क्षमताओं के प्रशिक्षण एवं परिष्करण के अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि 'कल्चर' में मानसिक परिष्करण का ही भाव सन्निहित है। इस दृष्टि से यदि देखें तो इसका मूल अर्थ 'कृषि' भी इससे सर्वथा नहीं है। वस्तुत कृषि का उद्देश्य भूमि का परिष्कार करना ही होता है। भूमि की भली प्रकार साफ करके ही उसमें बीजवपन किया जाता है और तदुपरान्त उत्तम फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार श्रेष्ठ जीवनयापन के लिए अन्तः करण की शुद्धि तथा परिष्कृति की जाती है। अतः स्पष्ट है कि भूमि के परिष्कार की प्रक्रिया ही कालान्तर में मानसिक परिष्कार के अर्थ में ग्रहण की जाने लगी और इसी अर्थ में 'कल्चर' शब्द का प्रयोग होने लगा।

कुछ विद्वान 'कल्ट' से 'कल्चर' का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। 'कल्ट' का मूल अर्थ है धार्मिक क्रिया अथवा उपासना | प्रत्येक धार्मिक कृत्य तथा उपासना का अप्रत्यक्ष लक्ष्य मन की शुद्धि एवं परिष्कृति करना होता है। सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत होकर उनकी उपासना किया करता था। इसका उद्देश्य मन को भय आदि विकारों से रहित करना तथा प्राकृतिक शक्तियों को अपने अनुकूल बनाया है। 'कल्ट' का यही अर्थ विकसित होते-होते आज 'कल्चर' के रूप में केवल मानसिक परिष्कृति तक ही सीमित रह गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'संस्कृति' एवं 'कल्चर' समानार्थी ही है। इन दोनों के मूल अर्थ में 'परिष्करण' एवं 'उन्नयन' की भावना सन्निहित है।

(ख) संस्कृति की परिभाषा

'संस्कृति' को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषाबद्ध करने का प्रयत्न किया है ये परिभाषाएँ संख्या में तो अत्यधिक हैं ही अपने केन्द्रीभूत भाव में भी इतनी पृथक-पृथक है कि कई बार तो परस्पर विरोधी सी प्रतीत होने लगती है। ऐसी स्थिति में 'संस्कृति' की एक सर्वमान्य परिभाषा देना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसके लिए सर्वप्रथम विभिन्न विद्वानों के द्वारा की गई परिभाषाओं के आधार पर संस्कृति के सामान्य स्वरूप से परिचित होना आवश्यक है।

प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए कहा है कि संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार,कानून प्रथा तथा ऐसा ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

उपर्युक्त परिभाषा में संस्कृति के विषय में निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है-

1. संस्कृति का उद्गम एवं विकास मनुष्य समाज में ही सम्भव है। अतः - मानव के जन्म के साथ ही संस्कृति का भी प्रारम्भ माना जाना चाहिए।

2. मनुष्य सामाजिक प्राणी है और संस्कृति भी उसे सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होती है। अतः संस्कृति के निर्माण में एक व्यक्ति का नहीं, अपितु समस्त समाज का योग होता है।

3. संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जिसमें समाज से गृहीत प्रत्येक क्षमता एवं आदत समाहित हो जाती है।

4. संस्कृति में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होने का गुण है। हर्सक विट्स के विचार संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है। उपर्युक्त परिभाषा से दो तथ्य प्रकट होते हैं। प्रथम तो मानव-जीवन दो प्रकार के पर्यावरणों में पलता है प्रथम प्राकृतिक वातावरण और द्वितीय सामाजिक वातावरण सामाजिक पर्यावरण का निर्माण मनुष्य स्वयं करता है। प्राकृतिक पर्यावरण के योग से मनुष्य जो कुछ भी

निर्माण करता है, वह उसकी अपनी रचना होती है और इस रचना का सम्बन्ध समाज से होता है। यह रचना भौतिक भी हो सकती है और अभौतिक भी। दोनों ही प्रकार की रचनाएँ संस्कृति का अंग है।

संस्कृति के विकास का मापदण्ड मनुष्य की मानसिक एवं शारीरिक रचनात्मक क्षमता है। इस प्रकार प्रस्तुत परिभाषा में मानव की सृजनात्मक क्षमता को ही संस्कृति का स्रोत माना गया है।

बेकन के विचार में 'सर्वश्रेष्ठ ढंग से समझने के लिए इसे मानवता का वह प्रयत्न कहा जा सकता है, जिसमें वह अपने आन्तरिक स्वतन्त्र अस्तित्व को प्रभावपूर्ण ढंग से स्थापित कर रही है'।

प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार संस्कृति का सम्बन्ध मानवता से है। मानवता से तात्पर्य है वे मानवीय गुण, जो मनुष्य को पशु से पृथक करते हैं। अपनी मूल प्रवत्तियों की तुष्टि के आधार पर मनुष्य तथा पशु में कोई अन्तर नहीं है। जब मनुष्य इनकी तप्ति के स्तर तक ही अपने को सीमित रखता है तो पाशविक वत्तियों का आधिपत्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में जब मनुष्यता, पाशविकता से संघर्ष करके अपना अस्तित्व प्रकाश में लाती है तो यह क्रिया संस्कृति कहलाती है। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि संस्कृति पशुता के स्तर से मानवीय स्तर तक ले जाने की प्रक्रिया है। अतः यह भौतिक न होकर आन्तरिक है।

डॉ. देवराज के अनुसार- 'संस्कृति' का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सजन की वे क्रियाएँ समझनी चाहिए जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए उसे समद्ध बनाने वाली है।

उपर्युक्त परिभाषा की दृष्टि से संस्कृति का सम्बन्ध चिन्तन से है, जिसमे दर्शक का समावेश हो जाता है। संस्कृति का रचनात्मक पक्ष कलात्मक होता है अर्थात उसमें साहित्य एवं विविध कलाओं का समावेश रहता है। संस्कृति अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन का उन्नयन करती है।

एक अन्य स्थान पर डॉ. देवराज ने संस्कृति को परिभाषाबद्ध करते हुए कहा है, संस्कृति उस बोध या चेतना को कहते हैं जिसका सार्वभौम उपभोग स्वीकार हो सकता है और जिसका विषय वस्तुसत्ता के ये पहलू है जो निर्वैयक्तिक रूप में अर्थवान है।

प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार संस्कृति एक चेतना है। मनुष्य की चेतना सदैव अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख रहती है। अतः संस्कृति मनुष्य की सृजनात्मक प्रक्रिया का परिणाम है। संस्कृति मनुष्य के अस्तित्व का प्रसार करती है। यह भौतिक न होकर आन्तरिक है । सर्वग्राह्यता एवं सार्वभौमिकता ही इसकी प्रामाणिकता के आधार है।

वाचस्पति गैरोला के विचार में- जिससे मानवता का संस्कारहो, ऐसी शिक्षा-दीक्षा, ऐसा रहन-सहन और ऐसी परम्पराएँ ही संस्कृति के उद्भावक है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है और वह संचय से विकसित होती है।

उपर्युक्त परिभाषा की दृष्टि से संस्कृति का सम्बन्ध समाज से है। इसमें मनुष्यता के परिष्करण की भावना निहित है। यह परिष्करण शिक्षा-दीक्षा, जीवन-प्रणाली तथा पारम्परिक रीतियों के आधार पर होता है। संस्कृति गतिशील है। यह एक पीढ़ी- द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जाती है।

राम जी उपाध्याय ने संस्कृति को परिभाषाबद्ध करते हुए लिखा है, 'संस्कृति वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है'।

प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार संस्कृति द्वारा कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का नहीं अपितु सर्वसाधारण के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व की निष्पन्नता से तात्पर्य है मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक सन्तुलन। मनुष्य में यह सन्तुलन लाने की क्रिया ही संस्कृति है। संस्कृति भौगोलिक आधार पर ही इस क्रिया को 'निष्पन्न' करती है।

दिनकर के विचार में 'संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं'।

उपर्युक्त विचारानुसार संस्कृति जीवन जीनेकी प्रणाली है। अतः इसमें भौतिकता का पूर्णत अभाव है। यह पूर्णतया अन्तःकरण से सम्बद्ध है। संस्कृति का विकास समाज में ही सम्भव है। पारस्परिक रूप से यह संस्कृति एक पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है।

वे एम. मुंशी के विचार में यह आधारभूत मूल्यों से प्रेरित जीवन की वह चरित्रगत प्रणाली है, जिसमें एक प्राणी समुदाय जीवित रहता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संस्कृति जीवन जीने की प्रणाली है।यह प्रणाली पूरे समुदाय में समाहित रहती है। इस प्रणाली के सृजन का आधार मनुष्य जीवन के आधारभूत मूल्य है।

डॉ. राधाकृष्णन ने ''संस्कृति को 'विवेक' बुद्धि का जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम'' कहा है।

इस दृष्टि से संस्कृति मनुष्य को सत्-असत् में विवेक करना सिखाती है। सम्पूर्ण जीवन की प्रक्रिया तथा उसके उद्देश्य से परिचित कराने की प्रक्रिया ही संस्कृति है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर संस्कृति सम्बन्धी निम्न लिखित तथ्य उद्घाटित होते है-

1. संस्कृति का उद्भव एवं विकास मानव-जीवन में ही सम्भव है।

2. संस्कृति जीवन से अनिवार्यत सम्बद्ध है।

3. संस्कृति गतिशील है। यह एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को निरन्तर हस्तान्तरित की जाती है।

4. संस्कृति देशगत भी होती है और सार्वभौम भी

5. संस्कृति जीवन जीने की प्रणाली है।

6. संस्कृति मनुष्य को पशुता से मनुष्यता की ओर अग्रसर करती है।

7. संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के विचार पक्ष से होता है और इसकी अभिव्यक्ति कलात्मक सर्जना के रूप में होती है।

8. संस्कृति अनुपयोगी होते हुए भी मानव जीवन का उन्नयन एवं परिष्कार करती है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि संस्कृति समाज में रहकर मनुष्य द्वारा अर्जित की गयी वह विकासोन्मुखी प्रक्रिया है, जो दर्शन ,धर्म, नैतिकता ,सौन्दर्य एवं सम्बन्ध योजना के माध्यम से मनुष्य के विचार आचार को अधोगति से सद्गति की ओर प्रेरित और प्रवृत्त करती है तथा उन जीवन-मूल्यों की स्थापना करती है जो देशगत होते हुए भी सार्वभौम होते हैं।

बाह्य प्रकृति, अन्तः प्रकृति और संस्कृति

प्रकृति से तात्पर्य उस समस्त दृश्य-अदृश्य जगत से है जिसकी रचना स्वतः होती है। उसकी सृष्टि में मनुष्य का कोई योग नहीं होता। 'प्रकृति' शब्द 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'कृति' शब्द से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है 'अधिक रचना' अथवा किसी मानवेतर विशिष्ट शक्ति के द्वारा की गई विशिष्ट रचना मानव कृति से भिन्न, जिन पदार्थों का बोध या ग्रहण हमारी इन्द्रियों करती है, ये सब प्रकृति के अन्तर्गत है। प्रकृति का मूल अर्थ है वस्तु अथवा व्यक्ति का मूल गुण तथा स्वभाव। यह वह मूल शक्ति है, जिसने अनेक रूपात्मक जगत का विकास किया है तथा जिसका रूप दृश्यों में दृष्टिगोचर होता है। इसे जगत का उपादान कारण भी कहते हैं। यही कुदरत है। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति बहिर्जगत एवं आन्तरिक वृत्तियों की सवाहिका है। सांख्यने चैतन्य की सत्ता पुरुष रूप में स्वीकृत की है और मन का अन्तर्भाव प्रकृति के भीतर किया है जिससे मानसिक दशाओं और भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। प्रकृति के अन्तर्गत उन समस्त गुणों, लक्षणों, विशेषताओं,

अवयवों और क्रियाओं को समाहित किया गया है, जो एकत्र होकर मनुष्य अथवा किसी अन्य प्राणी के जीवन्त अस्तित्व का निर्माण करते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रकृति अपनी विशाल परिधि में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार के जगत् को समाहित किए हुए है। इसी आधार पर इसे बाह्य प्रकृति एवं अन्तःप्रकृति की संज्ञा प्रदान की जाती है।

संस्कृति का सम्पूर्ण इतिहास मानव की प्रकृति पर सतत विजय के इतिहास से सम्बद्ध है। सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य का जीवन पशु-सदृश ही था। उसके समक्ष केवल प्राकृतिक उपादान ही विद्यमान थे, जिनके सम्यक् उपयोग से भी वह अपरिचित था। यही नहीं विभिन्न प्राकृतिक आपदाएं भी उसे भयभीत करती रहती थीं। ऐसी विकट परिस्थिति में मनुष्य के लिए उसका मस्तिष्क अनुपम वरदान सिद्ध हुआ । उसने अपनी समस्याओं के समाधान खोजने प्रारम्भ किए और शनैः शनैः वह उनमें सफलताभी अर्जित करता गया। सर्वप्रथम उसने प्रकृति प्रदत्त कन्दरओं में आश्रय ग्रहण किया और नुकीले पत्थरों के औजारों द्वारा पशुओं का शिकार करने लगा। वृक्ष की छाल को वह वस्त्र के रूप में प्रस्तुत करता था। ऐसी स्थिति में उसकी सर्वाधिक चमत्कारपूर्ण सफलता थी अग्नि का आविष्कार जो उसने पाषाण घर्षण के द्वारा प्राप्त किया। 'यह एक ऐसा जटिल आविष्कार था जिसमें अविच्छिन्न रूप से मनुष्य के बड़े आविष्कारक होने की पूर्व सूचना थी।अग्नि के द्वारा मनुष्य मांस भी पका कर खाने लगा और इस प्रकार शनैः शनैः वह पशुओं से पृथक् होने लगा। ज्यों ज्यों मनुष्य के मस्तिष्क का विकास होता गया और उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं, त्यों-त्यों वह प्राकृतिक उपादानों का अधिकाधिक संस्कार करता हुआ अपने जीवन को सुखद बनाने लगा। उसने कृषि का ज्ञान प्राप्त किया। इससे उसके खान-पान में तो परिष्कार हुआ ही साथ ही उसे ग्राम एवं नगर बसानेकी प्रेरणा मिली। इनकी सम्यक व्यवस्था के लिए उसने शासन-प्रणाली का सूत्रपात किया। इस प्रकार पाषाण युग तथा धातु-युग आदि में से सतत आविष्कार एवं विकास करता हुआ मनुष्य आज हमें वर्तमान सभ्य एवं सुसंस्कृत रूप में दृष्टिगत होता है मनुष्य की बाह्य प्रकृति पर विजय ही वैज्ञानिक उपलब्धि के रूप में दृष्टिगत होती है।

जैसे-जैसे मनुष्य बाह्य प्रकृति का परिष्कृत विधि से उपयोग करता गया, वैसे-वैसे उसकी आन्तरिक वृत्तियों का भी 'संस्कार' होता गया। प्रारम्भ में मनुष्य का जीवन अपनी मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि तक ही सीमित था। उसका समस्त क्रिया-कलाप काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि विकारों की प्रबलता से ही अनुप्रेरित था । सामाजिकता के विकास ने उसे सन्तुलित व्यवहार के महत्त्व से परिचित कराया और उसमें स्वहित के साथ-साथ परहित की भावना भी उत्पन्न हुई। वस्तुतः 'मनुष्य सदैव एवं नवीन भाव या आविष्कार तक पहुँचने का प्रयत्न करता रहा है और जहाँ उसे वह दिखा कि उसने ग्रहण कर लिया। समय के साथ-साथ मनुष्य की रुचि केवल दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं रही। उसने जीवन एवं जगत् के रहस्य से परिचित होने के लिए इसके उपादान कारक को खोजने का प्रयत्न किया। इसके साथ ही बुद्धि तथा कल्पना के योग से अपनी अनुभूतियों को भी सुन्दर तथा कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने लगा। मानसिक शान्ति के लिए विभिन्न अनुष्ठान तथा उपासना- पद्धतियों की योजना की गई और सुचारू लोक-व्यवहार के लिए भी नियम निश्चित किये गए। इस प्रकार एक ओर मनुष्य ने अपने विकासशील अन्तःकरण द्वारा दर्शन, साहित्य, कला, धर्म एवं नैतिक मूल्यों का विकास किया और दूसरी ओर इनके माध्यम से वह अपने विचार एवं आचार को अधिकाधिक संस्कृत एवं परिष्कृत करता गया। इस 'माँजी-सँवरी जीवन-वृत्ति तथा जीवन-चर्या का ही संस्कृति । वस्तुतः 'समस्त मानव-समाज के विकास की व्यष्टिमय तथा समष्टिमय उपलब्धियाँ ही संस्कृति है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृति का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'हमारी जीवनधारा उससे असम्पृक्त होकर चल ही नहीं सकती। अपनी विशिष्ट पद्धतियों को लिए हुए हम दिन-रात उसी में चक्कर काटा करते हैं। हमारी दैनिक, भौतिक जीवन-चर्या को ही नहीं, आध्यात्मिक सृष्टि भी उसी के संकेतों पर चलती है। बाह्य प्रकृति केवल संस्कार्य है। मनुष्य स्वयं इसका संस्कार एवं परिष्कार करता हुआ इसे निरन्तर अपने लिए उपयोगी बनता आ रहा है और इस प्रकार संस्कृति की समृद्धि में सतत योग प्रदान कर रहा है। अन्तः प्रकृति जहाँ एक ओर संस्कार्य है, वहाँ दूसरी ओर संस्कार- विधायिका भी है। मनुष्य संस्कृति के द्वारा जहाँ अन्तः प्रकृति के विकारों कापरिमार्जन करता हुआ इसे संस्कृत रूप प्रदान करता रहा है, वहाँ दूसरी ओर इससे अनुप्रेरित होकर संस्कृति के उपजीव्य तत्त्वों की भी रचना करता आ रहा है जो संस्कृति के विकास एवं प्रसार में मेरुदण्ड का कार्य करते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रकृति ही सांस्कृतिक विकास की आधारभूमि है।

संस्कृति और भाषा

आत्माभिव्यक्ति मनुष्य का अप्रतिम गुण है। मानवीय अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। उत्कृष्ट अभिव्यक्ति में उत्कृष्ट भाविक उपादानों का उपयोग होता है। इस प्रकार भाषा किसी विशिष्ट जन समूह द्वारा अपने भाव, विचार आदि प्रकट करने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले शब्द तथा उनके संयोजन का एक व्यवस्थित क्रम है। मानवीय संस्कृति की सबसे मूल्यवान उपलब्धि भाषा है। भाषा तथा संस्कृति परस्पर अन्योन्याश्रित है। संस्कृति अपने विशिष्ट रूप में किसी भी देश की भौगोलिक सीमाओं तथा इतिहास से सम्बद्ध होती है तथा किसी भी देश की भाषा के निर्माण का आधार उस देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है। भाषा के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द के साथ तत्सम्बन्धी देश अथवा काल की संस्कृति का कोई न कोई वृत्त जुड़ा रहता है। वे ही शब्द जन-हृदय को अधिकाधिक स्पन्दित करने में समर्थ होते हैं, जो सांस्कृतिक इतिहास से सम्बद्ध होते हैं। भाषा हमारी जातीय मनोवृत्ति की परिचायक होती है।यही कारण है कि संस्कृति के विकास के साथ-साथ भाषा भी विकसित तथा परिवर्तित होती जाती है। संस्कृति जितनी ही अधिक समृद्ध होगी, उस समृद्धि की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द भण्डार भी उतना ही अधिक समृद्ध तथा उन्नत होगा। संस्कृति के जो अंग काल-प्रवाह के साथ धीरे-धीरे लुप्त होते जाते हैं, उन अर्थों के वाहक शब्द भी भाषा से समाप्त होते जाते हैं। वस्तुतः जो जाति विभिन्न क्षेत्रों में लगातार मौलिक अन्वेषण व चिन्तन करती रहती है वह तदनुरूप भाषा का विकास भी करती रहती है। किसी देश या जाति की भाषा उसके सदस्यों के सर्जनशील बौद्धिक आत्मिक जीवन का प्रतिफलन मात्र है। साहित्यिक क्षेत्र में सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न जीवनदृष्टि ही उदात्त, गरिमापूर्ण तथा प्रभावशाली विम्बों का प्रयोग करने में सफल होती है जितने ही ये बिम्ब मानवीय उत्कर्ष की विविध संवेदनाओं तथा चिन्तनधाराओं से संयुक्त होते हैं, उतने ही अधिक स्थायी होते हैं। संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ भाषा भी स्वदेश की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करके अधिकाधिक प्रसारित होती जाती है।

भाषा के विकास का आधार जहाँ संस्कृति है, यहाँ संस्कृति के विकास तथा प्रसार का माध्यम भाषा है। संस्कृति के सभी उपजीव्य तत्त्व दर्शन, धर्म, भक्ति, पौराणिकता, सौन्दर्य-भावना तथा प्रेम भावना भाषा के माध्यम से जितनी शाश्वत अभिव्यक्ति तथा प्रसार करते हैं, उतनी अन्य किसी माध्यम से नहीं। इसका कारण यही है कि भाषा की अर्थ वहन क्षमता दूसरे माध्यमों की सीमाओं से मुक्त तथा अपरिमित है। काव्य संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है तथा 'काव्य रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं, वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है'। सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न साहित्यकार सम्पूर्ण युग की चेतना को भाषा के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित कर देता है। जिस जाति के पास समृद्ध एवं शक्तिशाली भाषा का माध्यम है, वही कला तथा चिन्तन के क्षेत्रों में विस्तृत उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती है।इस प्रकार "भाषा संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिशाली और समृद्ध उपकरण है, क्योंकि इस संगति और सम्बन्ध के बोध का सबसे महत्त्वपूर्ण वाहक है"। भाषा के अभाव में सभ्यता तथा संस्कृति के विकास की कल्पना करना भी असम्भव है। भाषा स्वयं एक परम्परा है तथा परम्परा के संक्रमण का सर्वाधिक शक्तिशाली तथा उत्कृष्टतम माध्यम है। इसीलिए 'परम्परा का वाहक' भी कहा जाता है। इस प्रकार भाषा संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अन्तर्वती तत्त्व है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भाषा की शब्दावली धारणाओं और अनुभूतियों की ही निरूपक होती है। साहित्य के रूप में भाषा ही अनुभूतियों का आकार प्रदान करती है। प्रत्येक भाषा का शब्द कोश राष्ट्रीय चिन्तन का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्य के इतिहास के रूप में संस्कृति की परम्परा ही व्यक्त होती है। इस प्रकार भाषिक माध्यम संस्कृति का समर्थ संवाहक है और साहित्य के रूप में वह संस्कृति का अभिन्न अंग भी है।

सन्दर्भ सूची

1. गुलाब राय, साहित्य और समीक्षा

2. डॉ० देवराज, संस्कृति (टिप्पणी)

3. सम्पा० रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, (पाँचवाँ खण्ड)

4. सम्पा० नवल जी, नालन्दा विशाल शब्द सागर

5. सम्पा० रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश

6. डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार (प्रस्तावना)

7. डॉ० मनमोहन लाल शर्मा, भारतीय संस्कृति और साहित्य

8. डॉ० बुध प्रकाश, भारतीय धर्म एवं संस्कृति

9. डॉ. देवराज, संस्कृति (टिप्पणी) प्र० सम्पा० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग-1

10. डॉ॰ देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन

11. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला

12. राम जी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका

13. दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय

14. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला

15. डॉ॰ मुंशी राम शर्मा, वैदिक संस्कृति और सभ्यता

16.सम्पा॰ रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश

17. सच्चिदानन्द वात्स्यायन, आधुनिक हिन्दी साहित्य

18. डॉ॰ देवराज, साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध